International Journal of Research in Hindi
www.hindijournal.in
ISSN: 2582-3493
Received: 15-08-2021, Accepted: 30-08-2021, Published: 15-09-2021
Volume 3, Issue 3, 2021, Page No. 29-32

राष्ट्रीय चेतना के विकास में हिन्दी साहित्य की प्रासंगिकता 'रामधारी सिंह दिनकर की रचनाओं के विशेष संदर्भ में'

डॉ गार्गी लोहनी
असिस्टेंट प्रोफेसर एवं विभाग प्रभारी, हिन्दी विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कुणीधार (मानिला), अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड, भारत

सारांश
भारतीय समाज की पहचान, प्रमुख विशेषता है– यहां की 'विविधता में एकता'। वैविध्यपूर्ण संस्कृति का समागम भारतीय सामाजिक व्यवस्था को विश्व स्तर पर एक नई पहचान दिलाती है। साथ ही साथ निरंतर बदलती परिस्थितियां एवं आवश्यकताओं के अनुरूप सामाजिक संरचना के निर्माण एवं उनके व्यवस्थापन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं लेकिन समकालीन समय में परिवर्तन जिस गति से घटित हुआ है, वह सामाजिक एवं राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न समस्याओं के उद्भव का प्रत्यक्ष एवं परोक्ष कारण साबित हो रही है। ऐसे समय में जब दुनिया तेजी से वैश्वीकृत होती जा रही है, पुरातन पंथी और रूढ़िवादी दुराग्रहों के लिए जगह दिनानुदिन सिकुड़ती जा रही है। दुनिया भर में ऐसी शक्तियाँ अपने को बचाये और बनाये रखने के लिए धर्म और सम्प्रदाय यहाँ तक कि निहत्थे और मासूम लोगों को अपना कवच बनाकर सभ्यता और संस्कृति को बचाने का भ्रम फैला रही हैं। कल तक जो हमारी सामाजिक व्यवस्था एवं संस्कृति की गौरवगाथा एवं आकर्षण का केन्द्र था, आज वही समाज की एक लाइलाज बीमारी का रूप धारण कर चुकी है। एक प्रचलित कहावत है– 'स्वर्ग पहुँचने की जो चाबी है वह नर्क के दरवाजे को भी खोलती है।' आज की परिस्थिति के संदर्भ में देखें तो यह कहावत भारतीय सामाजिक व्यवस्था पर सटीक रूप में लागू होती है। जाति, भाषा, धर्म, क्षेत्र एवं परिवारवाद की जो लहर आज समाज में तेजी से फैली है, उसे राष्ट्रवाद की भावना के द्वारा ही रोका जा सकता है। ऐसी परिस्थितियों में यह बेहद जरूरी हो जाता है कि हर भारतीयों के दिलों में 'राष्ट्रवाद' की अलख जलाई जाए। यह तभी संभव है जबकि आमजनों तक राष्ट्रवाद, धर्मनिरपेक्षतावाद, सामाजिक न्यायवाद, लैंगिक समानतावाद आदि साम्प्रतिक जीवन मूल्यों की प्रकृति और प्रभाव की पहुंच समयानुकूल सुनिश्चित की जा सके। इन भावनाओं और विचारों को आमजनों तक पहुंचाने का सबसे सरल और सशक्त माध्यम है साहित्य।
राष्ट्रवाद के विकास का भारतीय संदर्भ राजनैतिक दृष्टिकोण से बहुत प्राचीन नहीं है। यह देश राजनैतिक रूप से न सही भौगोलिक और सांस्कृतिक रूप से बड़े गहरे अर्थों में अत्यन्त प्राचीन काल से एक–सूत्र बद्ध रहा है। सामने दिखाई देने वाली प्रकट बहुविधताओं और विभिन्नताओं के बावजूद जीवन के प्रति अपनी आधारभूत समझ में यहाँ के लोग प्राचीन काल से एक–से रहे हैं। यहाँ तक कि कालान्तर में अन्यान्य भूभागों से आयी प्रजातियाँ भी यहाँ रच–बस कर यहाँ के लोगों जैसी होती देखी जाती रही हैं। अतः समाजिक–सांस्कृतिक सामंजस्य के इस सातत्य ने भारत की राष्ट्रीयता को एक विलक्षण स्वरूप दे डाला है। विभिन्न साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में इन विलक्षणताओं को बड़ी ही कुशलता के साथ उकेरने का कार्य किया है, जो तात्कालिक ही नहीं बल्कि वर्तमान परिवेश में भी राष्ट्रीय चेतना के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर भी इन्हीं प्रमुख साहित्यकारों में एक हैं। दिनकर को द्वन्द्वों का कवि कहा गया है। अनेक बार उन्होंने स्वयं भी इस ओर संकेत किया है। कहीं वह गांधीवादी विचारधारा का वाहक प्रतीत होते हैं तो कहीं राष्ट्र की रक्षा के लिए एकजुट होकर युद्ध के लिए उत्प्रेरित करते नजर आते हैं। आपने सामाजिक समानता एवं राष्ट्रीय एकता की बात अपनी काव्य रचनाओं में की है, जो आज के समय की भी मांग है। इन्हीं तथ्यों को उजागर करने तथा राष्ट्रीय चेतना के विकास में हिन्दी साहित्य और खासकर रामधारी सिंह दिनकर की रचनाओं के प्रभावों का विश्लेषण संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत शोध पत्र में किया गया है।

मुख्य शब्दः राष्ट्र, अजायबघर, संस्कृति, चित्तवृत्ति, जातिवाद, गांधीवादी, संकल्पना, औपनिवेशिक काल

प्रस्तावना
भारतीय समाज धर्म, जाति, प्रजाति, भाषा एवं संस्कृति का अजायबघर है। यहां की वैविध्यपूर्ण संस्कृति प्राचीन काल से ही विश्व आकर्षण का केन्द्र रही है। लेकिन यह कहना कि विश्व आकर्षण का यह केन्द्र सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक रूप से सर्वथा समाजोपयोगी ही रहा है, अतिशयोक्ति होगी। यह सर्वविदित है कि विभिन्न संस्कृतियों का समागम एक ओर जहां विभिन्न सामाजिक समस्याओं के उद्भव का कारण बनती है, वहीं निरंतर बदलती परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं के अनुरूप मनुष्य में समायोजन एवं अनुकूलन की क्षमता भी विकसित करती है। ज्ञात साहित्यिक स्रोतों से भी यह स्पष्ट हो चुका है कि अपने आरंभिक काल से ही भारतीय समाज की सामाजिक एवं सांस्कृतिक संरचना में सामाजिक स्तरीकरण की पैठ रही है। पारंपरिक रूप से इस सामाजिक स्तरीकरण का आधार जाति, धर्म, प्रजाति, लिंग, भाषा आदि रही है। इस सामाजिक परंपरा की गहराई में जाने पर यह भी स्पष्ट ज्ञात होता है कि समाज में एक ओर जहां कुंठित एवं संकीर्ण मानसिकता के उद्भव एवं विकास तथा उसके प्रसरण (फलने–फूलने) का कारण यहां के वैविध्यपूर्ण सांस्कृतिक परिवेश को माना जाता है, वहीं इस वैविध्यपूर्ण सांस्कृतिक परिवेश में ही अनेक ऐसी विभूतियों का जन्म भी हुआ है, जिनका सम्पूर्ण जीवन काल मानवता का प्रतीक है। इनके जीवन दर्शन का प्रयोग साम्प्रतिक समस्याओं से उबरने के लिए तथा जनमानस को और खासकर युवावर्ग को समस्याओं के प्रति सचेत करने तथा उनमें जागरूकता का भाव विकसित करने के लिए विविध रूपों में इसे प्रचारित एवं प्रसारित किया जाता रहा है। इन विधाओं में लोकगीत, लोकगाथा, लोकनाट्य, लोक साहित्य आदि प्रमुख है। हिन्दी साहित्य भी इन्हीं विधाओं की मात्र एक छोटी कड़ी है। सूचना समाज के इस दौर में जबकि अपनी निरंतर बढ़ती आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए लोग नए अवसरों की तलाश में कोई भी जोखिम उठाने को तत्पर हैं, यह

आवश्यक हो जाता है कि ऐसे लोगों को अमानवीय कृत्यों की दिशा में अग्रसर होने से रोका जाए। इनमें आज के अनेक आधुनिक माध्यमों के साथ–साथ हिन्दी साहित्य की प्रासंगिकता भी बढ़ जाती है। ऐसा इसलिए कहा जा रहा है, क्योंकि लोगों में मानवता की भावना विकसित करने तथा उनमें विविध रूपों में जागरूकता लाने के लिए समय समय पर विभिन्न साहित्यकारों ने इसका बखूबी प्रयोग किया है। इन साहित्यकारों में मैथिलीशरण गुप्त, भूषण, माखनलाल चतुर्वेदी, जयशंकर प्रसाद, रामधारी सिंह दिनकर आदि प्रमुख है।

साहित्य समाज की वास्तविक स्थिति को काल्पनिक रूप प्रदान कर समाज के समक्ष प्रस्तुत करने का एक सशक्त माध्यम है। इसकी प्रभावशीलता साहित्यकार की कल्पनाशक्ति एवं आलेखन की कुशलता पर निर्भर करती है। एक साहित्यकार के 'कलम की जादुई शक्ति' का ही प्रभाव होता है कि इसमें मानव समाज की भावनाओं, समकालीन स्थितियों, ज्वलंत समस्याओं एवं चित्तवृत्ति का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। यह प्रतिबिम्ब उस समय एवं समाज के परिवेश पर निर्भर करता है, जिसमें साहित्यकार निवासरत है। यही कारण है कि साहित्य में संचित समाज की छवि, उनके भावार्थ, पाठक वर्ग हेतु छिपे संदेश परिवेश एवं काल के आधार पर बदलते रहे हैं। इस संदर्भ में आचार्य रामचंन्द्र शुक्ल जी लिखते हैं 'जब कि प्रत्येक देश का साहित्य वहां की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ–साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है।' सदियों से हासिए पर जीवन व्यतीत करने को अभिशप्त समाज की इकाई को जागरूक करने में नवजागरण काल का अपना विशेष महत्व रहा है। यह वह दौर था, जिसमें एक ओर साहित्यकारों ने लोगों की सोई आत्मा को जगाने के लिए सियाही की बरसात की वहीं समाज सुधारकों ने सामाजिक एवं वैधानिक प्रावधान के द्वारा लोगों को इससे मुक्ति दिलाने की मुहिम चलाई। वंदना सेमल्टी अपने शोध पत्र में लिखती हैं कि हिन्दी साहित्य में लोगों को जागरूक करने के उद्देश्य से लेखनी आरंभ करने का श्रेय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को जाता है। इनके पश्चात मैथिलीशरण गुप्त, माखन लाल चतुर्वेदी, बाल कृष्ण शर्मा नवीन, सोहन लाल द्विवेदी आदि इस नवजागरण काल में अपनी ओजपूर्ण रचनाओं के माध्यम से राष्ट्रीयता का भाव विकसित करने तथा परंपरा से चली आ रही शोषण एवं उत्पीड़न की बेड़ियों से मुक्ति दिलाने की मुहिम का संचालन किया। रामधारी सिंह दिनकर का नाम भी इन्हीं राष्ट्रीय विचारधारा के प्रबल साहित्यकारों में लिया जाता है। उनकी सम्पूर्ण काव्य रचनाओं में पराधीनता के अभिशाप का प्रबल विरोध नजर आता है। इतना ही नहीं आजादी के बाद उभरती सामाजिक समस्याओं पर भी परोक्ष रूप से किये गये प्रहार उनकी रचनाओं में स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं। राष्ट्रीय चेतना उनकी रचनाओं का प्रबल आधार रही है, फिर चाहे वह रचना रश्मिरथी हो या परशुराम की प्रतीक्षा, कुरूक्षेत्र हो या हुंकार। ऐसे में रामधारी सिंह दिनकार के रचना संसार में प्रवेश करने से पूर्व सार रूप में यह जान लेना अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाता है कि प्रस्तुत शोध पत्र के अंतर्गत राष्ट्रीय चेतना से हमारा क्या तात्पर्य है।

राष्ट्रीय भावना की जागृति देश एवं समाज की प्रगति का आधार है। बदलते समय के साथ समाज में बढ़ता जातिवाद, क्षेत्रवाद एवं भाषावाद की भावनाओं ने देश के समक्ष एक गंभीर चुनौती उत्पन्न की है। आज राष्ट्रीयता की भावना को एक क्षेत्र की सीमाओं में बांधकर देखा जा रहा है, जिसके कारण आज क्षेत्रवाद, भाषावाद एवं सम्प्रदायवाद जैसी सामाजिक समस्याएं अपने पाँव पसार रही है। लेकिन यदि हम राष्ट्रीय चेतना को सही रूप में परिभाषित करने की कोशिश करें तो पता चलता है कि राष्ट्र मनोवैज्ञानिक और आध्यात्मिक भावनाओं से प्रेरित एकता की चेतना को दर्शाता है। एक राष्ट्र के लिए भौतिक अवयव उतना जरूरी नहीं है जितना कि एकता की भावना का मनोवैज्ञानिक अवयव। इनका संबंध न तो किसी भौतिक वस्तु से है और न ही सीमाओं से बंधी भूमि का भू भाग और जनसंख्या से।

हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना का इतिहास

रामधारी सिंह दिनकर का मानना है कि 'ज्ञान का साहित्य मनुष्य किसी भी भाषा में लिख सकता है, यदि उसनें उस भाषा को भली–भांति सीख लिया है। किन्तु रस का साहित्य वह केवल अपनी भाषा में रच सकता है।' यही कारण है कि विश्व की समस्त भाषाओं में रचित साहित्य का उस समाज में विशेष स्थान रहा है। राष्ट्रीय चेतना हिन्दी साहित्य की रचनाओं की एक महत्वपूर्ण विधा है। भारतीय हिन्दी परिषद के 41 वें अधिवेशन में त्रिभुवन नाथ शुक्ल ने कहा 'राष्ट्रीय चेतना एक संकल्पना है, जिसका मूल भाव है राष्ट्र की सांस्कृतिक चिंता। देश भौगोलिक एवं राष्ट्र सांस्कृतिक इकाई है। अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद' ने इसी संगोष्ठी में कहा था कि आदि काल में राष्ट्रीय चेतना जगाने वाला पहला महाकाव्य आल्हा है। तथा कवि जगनिक इस विधा के पहले आदि कवि है, जिन्होंनें आल्हा एवं ऊदल की वीरता का वर्णन अपनी रचनाओं में किया है। इनकी रचनाओं में राष्ट्र प्रेम के भाव सहज ही दिखाई पड़ते हैं। रवीन्द्र शुक्ल देश और राष्ट्र के बीच के भावात्मक अंतर को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि देश के लिए सीमाएं, प्रभुसत्ता और आबादी जरूरी है जबकि राष्ट्र की सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता है उसकी अस्मिता। किसी देश में रहने वाले लोगों के अनुभव, भाषा, विचार और नैतिक मूल्य पीढ़ी दर पीढ़ी संरक्षित एवं संवर्द्धित होते रहते हैं। चेतना के विकास में भाषा की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण होती है। इन विचारों से एक बात यह स्पष्ट हो जाती है कि चेतना का विकास सामाजिक वातावरण के सम्पर्क में प्रस्फुटित एवं विकसित होने वाला एक ऐसा भाव है, जो मनुष्य के अंदर छिपी नैतिकता, औचित्य और व्यवहारकुशलता को दर्शाती है। यही कारण है कि राष्ट्रीय चेतना के विकास में हिन्दी साहित्य की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण रही है।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र 'रामधारी सिंह दिनकर' की काव्य रचनाओं में छिपी राष्ट्रीय भावनाओं के विश्लेषण पर आधारित है। इस अध्ययन का मूल उद्देश्य इन भावनाओं की समकालीन प्रासंगिकता को समझना तथा राष्ट्रीय चेतना के विकास में इनके योगदान का आकलन करना है।

अध्ययन पद्धति

प्रस्तुत शोध–पत्र द्वितीयक तथ्यों पर आधारित एक विश्लेषणात्मक अध्ययन है। इस अध्ययन के सम्पादन के लिए 'रामधारी सिंह दिनकर' रचित विभिन्न काव्य कृतियों की सहायता ली गयी है। साथ ही इस शोध पत्र को सफलतापूर्वक पूर्ण करने के लिए आवश्यकतानुरूप उन रचनाओं एवं शोधपरक कार्यों की भी सहायता ली गयी है, जो 'रामधारी सिंह दिनकर' की रचनाओं को केन्द्र में रखकर की गयी है।

रामधारी सिंह दिनकर का रचना संसार और राष्ट्रीय चेतना

रामधारी सिंह 'दिनकर' का रचना–संसार 1928 ई0 से शुरू होकर 1974 ई0 तक प्रसरित है। वे देश और विश्व–स्तर पर ख्यात हिन्दी के उन दुर्लभ कवियों में एक हैं जिन्हें न केवल उनके अपने समय में बल्कि आज तक समाज के विविध वर्गों के पाठकों का प्यार और सम्मान हासिल है। दिनकर ने आजादी के पहले का वह दौर भी देखा जब अंग्रेजों द्वारा किया जाने वाला अत्याचार और अनाचार अपने चरम पर था और भारत के लोग अपनी तमाम भिन्नताओं और विविधताओं के बावजूद एकताबद्ध होकर उनसे संघर्ष कर रहे थे। उन्होंने देश को बँटते और आजाद होते देखा, इसके साथ ही उन्होंने आजादी के बाद के वर्षों में सामान्य भारतीय जनता के सपनों को एक–एक कर टूटते और बिखरते देखा। अपनी रचना–यात्रा के विभिन्न पड़ावों से गुजरते हुए वे अपने लिए और अपने पाठकों के लिए सोद्देश्य और सकर्मक जीवन की एक ऐसी राह तलाशते दिखाई देते हैं जो आधुनिक, मानवतावादी और समसामयिक अंतर्राष्ट्रीय अपेक्षाओं के अनुकूल हो।

इस प्रक्रिया में वे राष्ट्रीयता और राष्ट्रवाद के भारतीय परिप्रेक्ष्य को बार–बार व्याख्यायित और विश्लेषित करने की चेष्टा करते हैं। भारतीय संस्कृति और समाज के सामने तब से लेकर आज तक चली आती चुनौतियों की गहरी चिंता इनकी रचनाओं में दिखाई देती है।

रामधारी सिंह दिनकर के सम्पूर्ण रचनाकाल को अध्ययन की सरलता एवं विषय की प्रकृति के आधार पर मूल रूप से दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है–औपनिवेशिक काल में रचित साहित्य तथा स्वाधीन भारत में रचित साहित्य। पहली अवस्था में उनकी लेखनी स्वाधीनता संग्राम के लिए प्रयासरत जनमानस में ओजपूर्ण भावनाओं के विकास पर आधारित थी। इस काल में उनकी रचना कुरूक्षेत्र का अपना विशेष महत्व रहा है। कुरूक्षेत्र उस द्वन्द्व की अभिव्यक्ति है जो युद्ध और शांति, हिंसा और अहिंसा, प्रवृत्ति और निवृत्ति की जीवन पद्धति तथा विज्ञान और आत्म ज्ञान की परिणति में निहित है। 1928 में लाहौर में कांग्रेस कमेटी द्वारा पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव पारित होने के समय दिनकर ने उद्घोष किया –

'टुकड़े दिखा–दिखा करते क्यों मृगपति का अपमान?
औ मद – सत्ता के मतवालों, बनों न यूं नादान'

रामधारी सिंह दिनकर अपनी रचना के माध्यम से जितना युवाओं में लोकप्रिय रहे उतने ही वरिष्ठ लोगों के बीच भी अपनी छाप छोड़ने में सफल रहे। इनकी सम्पूर्ण रचना यात्रा परंपरा से आधुनिकता की दिशा में रही। इन रचनाओं के माध्यम से 'दिनकर' जन मानस में शक्ति का संचार करने, अपनी क्षमता को पहचानने तथा वीरता पूर्वक स्वाधीनता संग्राम में शामिल होने के लिए प्रेरित करते हैं। आपकी स्वतंत्रता संग्राम के दौरान की कृतियों में औपनिवेशिक शासन के विरूद्ध रोष स्पष्ट दिखाई देता है। जन मानस को स्वतंत्रता संग्राम के लिए अभिप्रेरित करने के लिए महाभारत का संदर्भ देते हुए आप लिखते हैं –

रे रोक युधिष्ठिर को न यहां जाने दे उनको स्वर्ग धीर,
पर फिरा हमें गाण्डीव–गदा लौटा दे अर्जुन, भीम वीर।

यही नहीं सत्याग्रह के समय भी इस आन्दोलन से जुड़े स्वतंत्रता सेनानियों को अभिप्रेरित करने के लिए आशा की दीपक शीर्षक कविता का आलेखन किया। इसमें इन सेनानियों को अभिप्रेरित करते हुए लिखते हैं –

दिशा दीप्त हो उठी प्राप्त कर पुण्य प्रकाश तुम्हारा,
लिखा जा चुका अनल–अक्षरों में इतिहास तुम्हारा।
जिस मिट्टी ने लहू पिया, वह फूल खिलायेगी ही,
अम्बर पर धन बन छायेगा ही उच्छ्वास तुम्हारा।
और अधिक ले जाँच, देवता इतना क्रूर नहीं है।
थककर बैठ गये क्या भाई! मंजिल दूर नहीं है।

स्वाधीनता संग्राम की अवधि के समान ही आपकी लेखनी स्वाधीन भारत में जारी रही। स्वाधीन भारत की सबसे बड़ी समस्या थी विभिन्न रूप में समाज में व्याप्त शोषण एवं उत्पीड़न। यह स्वतंत्र भारत के विकास की सबसे बड़ी बाधा थी। इन्हीं समस्याओं को ध्यान में रखकर आपने रश्मिरथी खण्ड काव्य की रचना की। इसमें कर्ण को नायक के रूप में प्रस्तुत कर समाज में व्याप्त वर्णाश्रम एवं जातिवादी व्यवस्था पर कठोराघात किया। तात्कालिक समय में भारतीय सामाजिक व्यवस्था जातिवाद एवं वर्णाश्रम की विचारधारा से ग्रसित था। यह समस्या न केवल तात्कालिक परिस्थिति में समाज के लिए एक अभिशाप था अपितु आज भी यह एक लाइलाज बीमारी बनी हुयी है। अपनी प्रमुख कृति रश्मिरथी में दिनकर ने वर्णाश्रम धर्म से उत्पन्न जन अपमान की इन भावनाओं पर परोक्ष रूप में तथा सहज भाषा शैली में प्रहार किया है। इसमें कवि यह स्पष्ट करते हैं कि इस तरह का सामाजिक व्यवहार किसी समाज के लिए कितना घातक साबित होता है। जाति एवं वर्णव्यवस्था पर आधारित किया गया यह व्यवहार किसी व्यक्ति को किस हद तक हठी बना सकता है, इसका उदाहरण इस काव्य में दिखाया गया है। इस प्रकार यह रचना जातिवाद के विष से पीड़ित आज के भारतीय समाज के लिए परोक्ष रूप से निदान प्रस्तुत करता है। किसी भी व्यक्ति की प्रतिभा उसके शौर्य, उसके शील, उसकी स्वाभाविक योग्यता और असाधारण व्यक्तित्व का सम्मान केवल उसके कुल, गोत्र, जन्म आदि के आधार पर नहीं किया जाना चाहिए बल्कि व्यक्ति के व्यक्तित्व का मूल्यांकन उसके सामाजिक व्यवहार के आधार पर होना चाहिए। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि उक्त रचना अपने भीतर से हमें एक प्रकार के भावात्मक सामाजिक समन्वय का संकेत देती है। इस संदर्भ में उनके द्वारा रश्मिरथी के प्रथम सर्ग में आलेखित उक्ति समयोचित प्रतीत होती है जिसमें लिखा गया है –

तेजस्वी सम्मान खोजते नहीं गोत्र बतला के,
पाते हैं जग से प्रशस्ति अपना करतब दिखला के।
हीन मूल की ओर देख जग गलत कहे या ठीक,
वीर खींच कर ही रहते हैं इतिहासों में लीक।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में वर्णाश्रम व्यवस्था एवं जाति व्यवस्था सामाजिक प्रस्थिति का निर्धारक कारक है। यह व्यवस्था जन्म पर आधारित होने के कारण समाज में योग्यतानुरूप प्रस्थिति संस्तरण का अभाव पाया जाता है। साहित्यकार रामधारी सिंह दिनकर समाज के पारंपरिक सामाजिक प्रस्थिति के निर्धारक कारक एवं सामाजिक संस्तरण मूल आधार पर प्रहार करते हुए लिखते हैं–

ऊँच–नीच का भेद न माने, वही श्रेष्ठ ज्ञानी है,
दया – धर्म जिसमें हो, सबसे वही पूज्य प्राणी है।
क्षत्रिय वही, भरी हो जिसमें निर्भयता की आग,
सबसे श्रेष्ठ वही ब्राह्मण है, हो जिसमें तप – त्याग

दिनकर के काव्य ने यह स्पष्ट कर दिया था कि कविता में वह शक्ति है, जो अत्याचार, उत्पीड़न, शोषण, के विरूद्ध आग उगल सकती है तथा सत्ता के मद में चूर राजनेताओं की नींद उड़ा सकती है। वे राष्ट्र की वास्तविक सत्ता जनता को ही मानते हैं। जन विरोधी ताकतों को ललकारते हुए प्रथम गणतंत्र दिवस 26 जनवरी 1950 के अवसर पर उन्होंने लिखा है –

सदियों की ठण्डी–बुझी राख सुगबुगा उठी,
मिट्टी सोने का ताज पहन इठलाती है;
दो राह, समय के रथ का घर्घर–नाद सुनो,
सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।

वास्तव में रामधारी सिंह दिनकर की काव्य रचनाओं में राष्ट्रीय चेतना के भाव समाहित है। हालांकि अनेक साहित्कारों का यह मानना है कि इनकी रचनाओं में राष्ट्रीय चेतना इन्हें विरासत से प्राप्त हुई। उस दौर के कवि और साहित्यकार इस प्रकार की काव्य रचनाओं को प्रमुखता के साथ प्रकाशित कर रहे थे। इस संदर्भ पुष्पा ठक्कर का मानना है कि 'दिनकर की काव्य चेतना की दिशा अभाव से भाव की ओर, निवृत्ति से प्रवृत्ति की ओर थी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, माखनलाल चतुर्वेदी, राम नरेश त्रिपाठी और मैथिलीशरण गुप्त के द्वारा उन्हें राष्ट्रीय कविता के संस्कार प्राप्त हुए। वास्तव में राष्ट्रीय कविता की जो परंपरा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से प्रारम्भ हुई उसकी परिणति हुई दिनकर में'

निष्कर्ष

राष्ट्रीय चेतना का विकास समकालीन समाज की सर्वाधिक महत्वपूर्ण आवश्यकताओं में एक है। यह एक ऐसी भावना है जिसके अंतर्गत देश की सामाजिक–सांस्कृतिक एवं आर्थिक उन्नति का मूल आधार छिपा है। इन भावनाओं के विकास में साहित्य की भूमिका असंदिग्ध रूप से स्वीकार की गयी है। यही कारण है कि नवजागरण और उसके बाद के कालों में 'कलम के सिपाहियों' ने लोगों की सोई आत्मा को जगाने के लिए स्याही की बौछार की थी। इतना ही नहीं स्वतंत्रता सेनानियों एवं शहीदों की प्रशंसा करने तथा उनकी राह पर चलने के लिए जनमानस को जागरूक एवं प्रेरित करने में भी इसकी भूमिका सराहनीय व अद्वितीय रही है। रामधारी सिंह दिनकर भी इन्हीं सेनानियों में एक हैं। रश्मिरथी जिसका प्रकाशन 1952 में हुआ, में दिनकर लिखते हैं कि 'कविता का जन्म मनुष्य की चेतना के भीतर निहित सुरक्षा की भावना से हुआ' यही कारण है कि आदिम कविता ज्यादातर प्रार्थनाओं के रूप में उद्धृत मिलती हैं। आदिकालीन भारतीय साहित्यों में ऋग्वेद में उद्धृत प्रार्थनाएं स्मरणीय एवं प्रसिद्ध हैं तथा उस समय की परिस्थितियों को जानने का सर्वाधिक प्रामाणिक साहित्यिक स्रोत माना जाता है। इससे यह बात स्पष्ट होती है कि साहित्य एवं काव्य का संबंध मनुष्य की हित चिंता से जुड़ा हुआ है। सभ्यता के प्रारंभिक समय में जब मानव समाज पूर्णरूपेण प्रकृति पर आश्रित था, प्रकृति के रहस्य उनके लिए अज्ञात थे। अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए आशंकित रहते थे तो उस अवस्था में उसने प्रकृति के विभिन्न स्वरूपों की आराधना अलग अलग तरीके एवं संबोधनों के साथ करने लगे। जिसने कालांतर में एक परंपरा का रूप धारण कर लिया। बदलते समय के साथ साहित्य के इस स्वरूप में व्यापक परिवर्तन आया तथा नवजागरण काल के दौरान आजादी के सिपाहियों में ओजपूर्ण भाव जागृत करने तथा समाज में व्याप्त अंधविश्वास एवं जातिवादी विचारधारा पर प्रहार करने का यह एक सशक्त माध्यम बनकर उभरा। जातिवादी रंजिश, राष्ट्र की अंधभक्ति एवं सम्प्रदायवाद की घटनाओं ने समाज के समक्ष एक विचारणीय लेकिन गंभीर चुनौती खड़ी की है। एक ओर हम संविधान के अंतर्गत समानता की बात करते हैं जबकि व्यावहारिकता की धरातल पर यह आज भी नदारद है। शहरी समाजों और कुछ निकटस्थ ग्रामीण समाजों को अपवाद स्वरूप छोड़ दें तो भारतीय समाज में असमानता मूल रूप से वर्णाश्रम व्यवस्था पर आधारित है। रामधारी सिंह दिनकर अपनी विभिन्न रचनाओं के माध्यम से राष्ट्रीय एकीकरण की बात करते हैं। उन्होंने अपनी विभिन्न रचनाओं में एक ओर जहां स्वतंत्रता के लिए वीर सपूतों को ओज प्रदान करते हैं वहीं समाज में व्याप्त असमानता एवं भेदभाव पूर्ण व्यवहार पर परोक्ष रूप में प्रहार भी करते हैं। आज जरूरत इस बात की है कि रामधारी सिंह दिनकर की राष्ट्रीय विचारधारा को समझा जाए। उनकी राष्ट्रीय विचारधारा का आधार उनकी वे काव्य रचनाएं हैं, जो न केवल युवा वर्ग बल्कि बालक एवं वृद्ध के लिए समान रूप से ग्राह्य है। देश को सही दिशा में ले जाना साहित्य का एक प्रमुख कर्तव्य है। इस दिशा में इनकी रचनाएं खरी उतरती है। इसके द्वारा समाज में नवीन लोक चेतना का विकास करना संभव है। इस कारण समकालीन संदर्भ में हिन्दी साहित्य और खासकर रामधारी सिंह दिनकर की राष्ट्रीय चेतना से सजी साहित्यिक रचना समय की मांग बन गयी है।

संदर्भ सूची

1. दिनकर रामधारी सिंह, रश्मिरथी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2004
2. दिनकर रामधारी सिंह, कुरूक्षेत्र, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 2016
3. दिनकर रामधारी सिंह, परशुराम की प्रतीक्षा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2016
4. कुमार, विमल, रामधारी सिंह दिनकर रचना संचयन, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 2008
5. सेमल्टी, वंदना, दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय चेतना, शोध मंथन वॉल्यूल X नम्बर III पेज 931–936
6. शुक्ल, रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, भार्गव पब्लिशिंग हाउस, 2020
7. सिंह गोपेश्वर, कल्पना का उर्वशी विवाद, वाणी प्रकाशन, दिल्ली 2010